टी-लैब : ख़ुशियों का आँगन

प्रमोद मैथिल

'विद्यार्थियों से जब यह पूछा गया कि क्या वे स्कूल में कभी बोर होते हैं, या ऊब महसूस करते हैं, तो एनएआईएस के 83 प्रतिशत विद्यार्थियों ने कहा कि कभी-कभार (50%) या अक्सर (33%) वह बोरियत महसूस करते हैं। इसके मुकाबले पब्लिक स्कूल के विद्यार्थियों में यह आँकड़ा 86% था, जिनमें 36% कभी-कभार और 50% अक्सर ही ऊब महसूस करते थे।'

एचएसएसएसई रिपोर्ट 2016[i]

यहाँ यह बात सिर्फ़ इस मुद्दे को रेखांकित करने के लिए कही गई है कि हमारे स्कूलों में विद्यार्थियों की एक बड़ी संख्या है जो ख़ुद को अलग-थलग महसूस करती है। मेरे ख़्याल में समस्या बच्चों में नहीं है। असल में इस दिशा में हुई खोज तो यह दिखाती है कि बच्चे वैज्ञानिकों की तरह काम करते हैं[ii]। पियाजे का दावा है कि बच्चे "ज्ञान-निर्माण"[iii] करते हैं। ऐतिहासिक तौर पर स्कूलों को इस तरह डिज़ाइन किया गया कि बच्चों के सपनों, उनकी आकाँक्षाओं एवं उनके हितों को पाठ्यक्रम में कोई जगह नहीं मिली और बच्चों के सीखने की रफ़्तार और उनकी निजी पृष्ठभूमि का कोई ख़्याल नहीं रखा गया।

आप मुझे इज़ाज़त दें तो मैं इन बातों पर ज़ोर देना चाहूँगा :

1. स्कूल अकादमिक तौर पर बच्चों को अपनी तरफ़ नहीं खींचते।
2. सच्चाई यही है कि जिस तरह से उन्हें पढ़ाया-लिखाया जाता है बच्चों को उसमें कोई मज़ा नहीं आता।

मैंने इतने सालों में जो अन्तर्दृष्टि प्राप्त की और जो सीखा है उसके आधार पर मैं इस लेख में उपर्युक्त कथनों पर अपनी बात रखने की कोशिश कर रहा हूँ। बच्चों के साथ मेरे अनुभवों से जो अन्तर्दृष्टि मिली और जो नवाचारी शिक्षाशास्त्र उभरकर आया है, उस पर भी विस्तार से बात करूँगा। यह कार्यप्रणाली विकसित हुई जब मैंने बड़ों के सत्ता के दायरे को थोड़ा छोटा कर दिया और बच्चों को स्वाभाविक तौर से सीखने और फलने-फूलने के मौक़े दिए। मैंने इसे नाम दिया 'नेचुरल लर्निंग मॉडल' (एनएलएम)।

वर्ष 2011 में, भोपाल में आनन्द निकेतन डेमोक्रेटिक स्कूल (एएनडीएस) नाम के नवाचारी स्कूल की स्थापना हुई। तीन सालों के सफल संचालन के बाद, सीखने के उस सारे सफ़र को 'स्कूल फ़ार माई चाइल्ड' (पेंगुइन) नाम की एक किताब में दर्ज किया गया। उसमें भाषा, विज्ञान और गणित सिखाने के लिए किए गए नए प्रयोगों और स्कूल की तरफ़ से किए जाने वाले मूल्यांकनों के बारे में भी चर्चा हुई। अपनी बात को और ज़्यादा स्पष्टता से रखने के लिए उस किताब से कुछ वृतान्तों और उसमें दी गई कुछ दलीलों को इस लेख में शामिल किया है। स्कूलों के लिए 'नेचुरल लर्निंग मॉडल' (एनएलएम) पर आधारित टी-लैब (T-LAB) पर भी चर्चा की गई है।

टी-लैब की पृष्ठभूमि

हमारी शिक्षा प्रक्रिया में ज़्यादातर विज्ञान के एक रेखीय तरीक़े का ही दबदबा रहा है। मिसाल के तौर पर, प्राकृतिक विज्ञानों में, बेजान चीज़ों पर अगर हम एक ही तरह की ऊर्जा और तौर-तरीक़ों का इस्तेमाल करें तो उनका व्यवहार भी एक ही तरह का रहता है। वहाँ ज़्यादातर कारकों को हम अपने नियंत्रण में रख सकते हैं, इसलिए पूरी प्रक्रिया में उन चीज़ों की कोई भूमिका नहीं रह जाती। मिसाल के लिए अगर मुझे किसी गेंद को एक ख़ास स्थान पर फेंकना है, तो उस जगह की दूरी, उसमें लगने वाली ताक़त और अन्य कारकों को ध्यान में रखते हुए मैं एक सटीक योजना बना सकता हूँ और गेंद उसी स्थान पर जाकर गिरेगी। अब मान लीजिए कि गेंद की जगह कोई पक्षी है तो उसमें कई ऐसे कारक भी जुड़ जाएँगे जिन्हें नियंत्रित नहीं किया जा सकता क्योंकि पक्षी एक जीवित प्राणी है। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि शिक्षा में हमारा सम्बन्ध बच्चों के साथ होता है, जिनके अपने दिल और दिमाग़ हैं, अपनी रुचियाँ हैं। समान परिणामों को पाने के लिए पूर्व-नियोजित चरणों को एक निश्चित क्रम में करने का विचार, शिक्षा के क्षेत्र में लागू नहीं किया जा सकता। इसके लिए बनने वाली योजना तो बिलकुल अलग क़िस्म की होनी चाहिए, इस बात को ध्यान में रखते हुए कि बच्चे सक्रिय अभिकर्ता हैं और शिक्षा की प्रक्रिया में जो भी होता है उससे उनका हित जुड़ा हुआ है।

नेचुरल लर्निंग मॉडल (एनएलएम)

सही अर्थों में उच्च शैक्षिक स्तर तभी हासिल हो सकता है जब बच्चों की एजेंसी को भी महत्त्व दिया जाए। ज़रूरत तो इस बात की है कि हम बच्चों पर भरोसा दिखाएँ और उसके मुताबिक़ स्कूल के ढाँचे और शिक्षा व्यवस्था में सुधार किए जाएँ। हमें ऐसी गतिविधियाँ, प्रक्रियाएँ और सामग्री तैयार करनी होगी कि बच्चों के बीच की विविधता एक संसाधन बन जाए और सीखने के माहौल में एक नई ऊर्जा भर दे, जिसमें बच्चे अपनी रुचियों और अपनी रफ़्तार से आगे बढ़ सकें, स्वतंत्रता, ज़िम्मेदारी और आपसी भरोसे के माहौल में फल-फूल सकें।

क्या हम स्कूलों में कोई ऐसी प्रणाली विकसित कर सकते हैं जिसमें हर बच्चा अपने ढंग से चीज़ों को कर सके और अपनी रफ़्तार और रुचि के मुताबिक सीख सके?

इस मामले में अपनी खोजबीन के दौरान जो भी मैंने सीखा और समझा वह मुझे जिस विधि की तरफ़ ले गया उसे मैंने एक नाम दिया 'नेचुरल लर्निंग मॉडल' यानी एक ऐसा तरीक़ा जिसमें बच्चे स्वाभाविक या प्राकृतिक रूप से सीख सकें। एक जैसे वर्गों को, अलग-अलग कोणों पर, एक केन्द्र के गिर्द रखने पर इसका प्रतीक बनाया जा सकता है। और ऐसा करने पर बीच में एक पूर्ण गोल आकार अपने आप ही बन जाएगा। यहाँ सारा ध्यान केन्द्र और वर्गों पर ही था न कि उस गोल आकार को बनाने में।

शिक्षा के मामले में, सीखने के इच्छित उद्देश्य वही बड़ा गोल आकार है जो कि मुख्य नहीं बल्कि एक सह-उत्पाद है, जो बाद में उभरकर आता है। हमें बस केन्द्र पर ध्यान देने की ज़रूरत है जो कि बच्चे की ख़ुशी है और वह सारे वर्ग, ज्ञान के उन क्षेत्रों में, जिन्हें हम हासिल करना चाहते हैं, की गई तरह-तरह की खोजबीन हैं। यह रणनीति एक तरह से मौजूदा स्कूलों के तौर-तरीक़ों से बिलकुल उलट है जहाँ आमतौर पर पहले हम सीखने के लक्ष्य तय करते हैं और एक पाठ्यचर्या बनाते हैं। और फिर पाठ्यक्रम और पाठ-योजना बनाई जाती हैं और फिर पढ़ाते वक्त सारा ध्यान इसी बात पर रहता है कि बच्चा हमारी योजना के मुताबिक चल रहा है या नहीं। इस तरफ़ तो ध्यान ही नहीं जाता कि बच्चा कुछ सीख भी रहा है या नहीं।

बच्चे सीखते कैसे हैं

भाषा

बच्चों में भाषा सीखने की अथाह क्षमता होती है। हम किसी भी चार साल के बच्चे की मिसाल ले सकते हैं जो अपनी मातृभाषा सीखता है। अगर उसकी मातृभाषा अँग्रेज़ी है तो मुझे नहीं लगता कि वह 'डी' और 'टी' अक्षरों की ध्वनियों को पहचानने में किसी तरह की कोई ग़लती करेगा। वह 'डेट' की जगह *'टेट'* या 'टॉक' की जगह *'डाक'* कभी नहीं कहेगा। हालाँकि कोई बच्चा यह नहीं बता पाएगा कि इन अक्षरों को एकदम सही तरीक़े से बोलने के लिए उसने अपनी जीभ को किस तरह मोड़ा। यह तो अपने आप सीखी हुई चीज़ है और सभी भाषाओं के लिए सही है। बच्चा ध्वनियों की इस पेचीदा व्यवस्था को समझता है और उन आवाज़ों को निकालना भी, वह भी बिना किसी के सिखाए।

जागते समय लगभग हर वक़्त ही यह आवाज़ें बच्चों के कानों में पड़ती रहती हैं और वे उनका इस्तेमाल करते हैं और उनके साथ खेलते हैं। जन्म के बाद के कुछ सालों में जब वे बोलने की शुरुआती कोशिशें करते हैं तो अपने बड़ों की प्यार-दुलार भरी प्रतिक्रियाओं से ही उन्हें यह अहसास होता है कि उन्होंने किसी ध्वनि को सही-सही बोल लिया है।

तो सीखने की प्रक्रिया की इस समझ से हमें क्या पता चलता है? यह बिलकुल सरल-सी बात है। बच्चों को भाषाओं से जान-पहचान बनाने और ख़ुद को अभिव्यक्त करने का हर मौक़ा दिया जाना चाहिए, और उनकी हर कोशिश के प्रति बहुत संवेदनशीलता से पेश आना चाहिए।

उत्सुकता, सीखने की ललक को बढ़ावा देती है

एक दिन कहानियों के सत्र के बाद छह साल की एक बच्ची क्लास में ही रुक गई। वह अपनी अध्यापिका से कुछ पूछने के लिए उतावली हो रही थी। उसने पूछा, 'ऐसा कैसे होता है कि जब भी आप किताब से कोई कहानी पढ़कर सुनाती हैं तो वह हर बार वैसी-की-वैसी ही रहती है। लेकिन जब मैं उसी किताब से कहानी पढ़कर सुनाती हूँ तो वह हर बार बदल जाती है?' अध्यापिका ने उसका जवाब दिया, 'मैं किताब में छपे हुए शब्दों को पढ़ती हूँ, जबकि तुम तस्वीरों से कहानी बनाती हो।' हमने इस बात पर ग़ौर किया कि उसके तुरन्त बाद ही वह बच्ची एक कहानी 'पढ़' रही थी। और फिर एक महीने के भीतर ही उसने पढ़ना सीख लिया। मुझे लगता है कि अध्यापिका के साथ हुई उस बातचीत ने उसमें छपे हुए शब्दों के रहस्य को जानने की उत्सुकता पैदा की, और उसी उत्सुकता में वह पढ़ना सीख गई।

idea LAB
By Prakriti Initiativies
A Dream Yard for HAPPINESS

भाषा के साथ प्रयोग

सीखने की कोशिशों के दौरान बच्चे भाषा के साथ प्रयोग करते हैं। भाषा के साथ उनके ऐसे ही कुछ 'खेलों और प्रयोगों' को मैं यहाँ पर रखना चाहूँगा। अपनी बेटी का ऐसा ही एक प्रयोग मुझे याद है जो उसने 5-4 साल की उम्र में किया था। उसके पास एक गेंद थी और वह चाहती थी कि मैं उसके साथ 'कैच-कैच' खेलूँ। उसने कहा, *'पापा, मैं फेंकूँगी आप केचना'* । जिस तरह से उसने केचना शब्द का प्रयोग किया उसने मुझे हैरान कर दिया। यह उसकी अपनी रचना थी, इंग्लिश शब्द कैच के साथ हिन्दी का प्रत्यय 'ना' जोड़ दिया। क्योंकि हम घर पर हिन्दी बोलते हैं, सो वह दौड़ना, कूदना, खेलना, रोना और नाचना जैसी क्रियाओं के बारे में जानती थी। उसने पता लगाया कि कैसे और कहाँ पर ना का इस्तेमाल करना है और केच की क्रिया के साथ 'ना' का प्रत्यय जोड़कर नया शब्द बना दिया।

स्कूलों में सीखने की भावना को बढ़ावा दिया जाना चाहिए और ऐसे मौक़े पैदा किए जाने चाहिए जिनमें नए-नए प्रयोगों और ग़लतियों के लिए जगह हो, और उसके लिए संसाधन जुटाने चाहिए और ऐसा माहौल बनाना चाहिए जिससे सीखने को बढ़ावा मिले। जो मेरी बेटी ने किया ज़्यादातर स्कूलों में कई शिक्षक इसे ग़लती भी मान सकते हैं और उसकी सज़ा भी दे सकते हैं, यह भूलकर कि ग़लतियाँ सीखने की प्रक्रिया का एक ज़रूरी हिस्सा हैं।

नेचुरल लर्निंग मॉडल के कुछ बिन्दु

बच्चों की शिक्षा में उनकी भागीदारी को मान्यता देना।

सीखना तो बच्चों की कोशिशों से अपने आप ही होता है- किसी दुधमुँहे बच्चे का उद्देश्य केवल अपनी बात को दूसरे तक पहुँचाना होता है न कि कोई भाषा बोलना। सीखना कोई सीधी लकीर में चलने जैसी चीज़ तो है नहीं, इसलिए अच्छा हो कि अलग-थलग विषय-सामग्री की बजाए, बस एक खुला माहौल बनाया जाए।

इस तरह का सहज माहौल बनाने के लिए तीन चीज़ें ज़रूरी हैं : शिक्षक का सत्तावादी भूमिका से निकलकर एक सहजकर्ता

की भूमिका में आना, बच्चों पर भरोसा और ग़लतियों के लिए जगह रखना।

टी-लैब : खुशियों का आँगन

हमने टी-लैब की रचना इस तरह से की कि वह बच्चों के लिए एक रोचक जगह बन सके और एनएलएम को व्यावहारिक तौर पर लागू किया जा सके। उसके अनूठे डिज़ाइन को विकसित

करने के लिए हमने कई जाने-माने विचारकों और दार्शनिकों से बहुत कुछ सीखा।

गाँधी जी का मानना था कि शिक्षा वह है जिससे बच्चे के शरीर, मन और आत्मा सभी पक्षों का सर्वोत्तम विकास हो सके। सर्वांगीण विकास का मतलब है ऐसी शिक्षा जिसमें हाथ, हृदय और मस्तिष्क तीनों को शामिल किया जाए –अँग्रेज़ी में इसे 3 एच (3 H – Hand, Heart & Head) का नाम दिया गया। मौजूदा शिक्षा प्रणाली और स्कूल सिर्फ़ दिमाग़ पर ही ज़ोर देते हैं, इस प्रणाली में हाथों के लिए बहुत ही कम जगह बचती है, और बच्चों के दिलों को शामिल करने की तो कोई बात भी नहीं करता! मेरा ख़्याल है कि गुणवत्तापूर्ण शिक्षा में अगर हम इस 3 एच को भी जोड़ लें तो कई तरह के मसले तो अपने आप ही हल हो जाएँगे जो बच्चों को सीखने से रोकते हैं।

इवान इलिच के इस मशहूर कथन में भी यही बात प्रतिबिम्बित होती है : 'जो भी हम सीखते हैं उसका एक बड़ा हिस्सा हिदायतों का नतीजा नहीं होता बल्कि एक अर्थपूर्ण माहौल में बेरोकटोक भागीदारी का नतीजा होता है।'

टी-लैब क्या है?

टी-लैब स्कूल में एक ऐसी जगह है जो पूरी तरह से बच्चों के रचनात्मक काम के लिए ही है, जहाँ पर बच्चे अपने विचारों और उन सवालों पर काम करते हैं जो उनके दिमाग़ में चलते रहते हैं और वह भी अपनी रुचि मुताबिक और अपनी ही चाल से। टी-लैब में बच्चों को अपनी सहज रचनात्मक गतिविधियों को पहचानने और उसकी पुष्टि करने की पूरी स्वतंत्रता मिलती

है। इस जगह को विकसित करने में बच्चों को भागीदार बनाकर हम बच्चों के जुड़ाव और ज़िम्मेदारी को सुनिश्चित करते हैं।

टी-लैब तो बच्चों के सपनों और ख़्यालों की दुनिया है, जहाँ पर तरह-तरह की ऐसी सामग्री रहती है जिसे वे जैसे चाहें इस्तेमाल करें। और जो बच्चों को आज़ादी, ज़िम्मेदारी और भरोसे के एक माहौल में सीखने और फलने-फूलने के भरपूर मौक़े पैदा करती है। इसमें कई तरह के कार्य-केन्द्र बनाए जाते हैं जिनमें रखी सामग्री का भण्डार हमेशा बढ़ता रहता है। बच्चों की मदद के लिए माहिर फैसिलिटेटर वहाँ मौजूद रहते हैं और बच्चे वहाँ जो भी कर रहे होते हैं उसके बारे में वह उन्हें ऐसे सुझाव देते रहते हैं जिससे उन्हें अपने प्रोजेक्ट के अलग-अलग पहलुओं को देखने का मौक़ा मिले। वह डिज़ाइन और प्रक्रिया में सुधार लाने में भी बच्चों की मदद करते हैं।

टी-लैब डिज़ाइन

टी-लैब की कुछ विशेषताएँ :

टी-लैब मुद्रा

टी-लैब से सामग्री खरीदने के लिए बच्चे मुद्रा का इस्तेमाल करते हैं और वह अपने पूरे किए गए प्रोजेक्टों और मॉडलों को वापस टी-लैब को बेच देते हैं। इससे उन्हें प्रोजेक्ट की सुन्दरता, नवीनता और मौलिकता के आधार पर अपनी कोशिशों के मूल्य को परखने का मौक़ा मिलता है।

टी-लैब का अपना ख़ासतौर पर डिज़ाइन किया हुआ एक प्लानिंग बोर्ड होता है, अपने ग्रुप और *आइडिया टीम* में चर्चा करने के बाद बच्चे अपने प्रोजेक्ट को वहाँ पर दिखा सकते हैं। यह देखा गया है कि अपने काम को दोस्तों के साथ साझा करना उनके लिए प्रेरणा का सबसे बड़ा स्रोत होता है।

काम को सुचारू रूप से चलाने और सामग्री के बँटवारे के लिए, कार्य की प्रकृति के आधार पर टी-लैब को अलग-अलग हिस्सों में बाँटा जाता है, जैसे कि इलेक्ट्रीसिटी लैब, कलर लैब, कैमिकल और माइक्रोस्कोप लैब इत्यादि।

टी-लैब की प्रक्रियाएँ

टी-लैब का सारा काम-काज बच्चों की देख-रेख में होता है, बिना किसी बाहरी दख़ल के। तीन टीमों को बनाने के लिए चुनाव करवाए जाते हैं : *आइडिया (Idea) टीम* यह सुनिश्चित करती है कि दूसरों द्वारा प्रस्तुत किए गए विचार कार्यरूप में परिणित हो पाएँ। दूसरी टीम है *बैंक*, जो टी-लैब के मुद्रा से जुड़े काम-काज को देखती है। *मटीरियल (Material)* टीम प्रोजेक्ट की ज़रूरतों के मुताबिक अलग-अलग तरह की सामग्री को व्यवस्थित करती है।

काम को सुचारू रूप से चलाना

जो लोग टी-लैब में फैसिलिटेटर के रूप में काम करते हैं उनके साथ हम काफ़ी समय व्यतीत करते हैं ताकि एक अध्यापक की कंट्रोल करने वाली मानसिकता से बाहर आने में उनकी मदद की जा सके। बच्चे वहाँ जो भी काम कर रहे हों, उस बारे में उनके साथ चर्चा के लिए वे उनके आस-पास मौजूद रहते हैं। वे तरह-तरह के सवाल पूछकर बच्चों की सोच को किसी ख़ास दिशा में प्रेरित या प्रभावित भी कर सकते हैं और ज़रूरत पड़ने पर उनकी समझ का स्तर बढ़ाने में उनकी मदद कर सकते हैं।

क्रियान्वयन और परिणाम

हर बच्चा ख़ुद यह तय करता है कि उसे क्या-क्या करना है और किस तरीक़े से करना है। टी-लैब व्यक्तिगत पाठ्यक्रम पर काम करता है जिसमें हर बच्चे की निजता को ध्यान में रखा जाता है। यहाँ स्कूल की *निर्देशात्मक* अकादमिकता को *व्यावहारिक* अकादमिकता का पूरक बनाया जाता है। सफलता और असफलता दोनों का ही सीखने में एक योगदान होता है और वह योग्यता के विभिन्न स्तरों को हासिल करने में सहायक होती हैं। हमारा मानना है कि अनुभव आधारित अधिगम असल में स्कूली शिक्षा का एक पूरक है। यह हमें उपलब्धियाँ हासिल करने में सक्षम बनाता है और आत्म-निर्भरता, रचनात्मक कामों में सहयोग, आलोचनात्मक चिन्तन, समस्याओं को सुलझाने, और अवलोकन करने और सवाल उठाने जैसे कई महत्त्वपूर्ण निजी और सामाजिक मूल्यों का निर्माण करता है। इसमें मोटर स्किल्स के विकास के भी भरपूर मौक़े मिलते हैं।

निष्कर्ष

अब मैं आपका ध्यान वापस उसी मूल मुद्दे पर ले जाना चाहूँगा और ईवान इलीच के इस तर्क के साथ अपने लेख को ख़त्म करूँगा जो उन्होंने अपनी किताब 'डी-स्कूलिंग सोसाईटी' में दिया है :

"स्कूलमय" होकर विद्यार्थी "ज्ञान प्राप्ति" को "शिक्षण" में, "विद्या प्राप्त करने" को "दर्ज़ा पास करने" में, "क्षमता हासिल करने" को "डिग्री सर्टिफिकेट लेने" में, और "कुछ नया कह पाने की योग्यता हासिल करने" को "वाक्चातुर्य बनाने" में भरमा जाता है। "स्कूलमय" होकर उसका कल्पनाभाव "मूल्य" के स्थान पर "नौकरी" को मान्यता देता है। "स्वास्थ्य की देखभाल" के बदले "डाक्टरी चिकित्सा" को, "सामुदायिक जीवन सँवारने" के बदले "समाज सेवा" को, "हिफाज़त" के बदले "पुलिस से बचाव" को, "राष्ट्रीय सुरक्षा" के बदले "सैन्य शक्ति सन्तुलन" को, और "उत्पादक काम" के बदले

"अँधाधुँध औद्योगीकरण" को मिथ्या मान्यता मिलने लगती है।

यह लेख सीखने के अनुभवों का सिर्फ़ एक वृतान्त भर नहीं है। मैं इस धारणा पर सवाल उठाता हूँ कि सीखने की प्रक्रिया को बुद्धि के तल पर ही पूरी तरह से समझा जा सकता है। सिखाना सम्भव नहीं है, बस सीखना हो जाता है। हो सकता है कि सारे बच्चों की सीखने की यात्रा एक ही रास्ते से आगे न बढ़े। फिर भी गतिविधियों को ऐसे व्यवस्थित किया जा सकता है कि बच्चों के समूह के साथ सीखना हो पाए। मेरा सुझाव है कि हमें ऐसी गतिविधियों पर ज़ोर देना चाहिए जिनमें बच्चों के लिए खुली खोजबीन करने की विविध सम्भावनाएँ हों और नेचुरल लर्निंग मॉडल ठीक ऐसा ही है।

References

i https://www.fcis.org/uploaded/Data_Reports/2016-HSSSE_Final_1.pdf on 12 Nov. 18

ii Alison Gopnik. What do babies think? TED talk as on 2 Nov 2015

iii https://en.wikipedia.org/wiki/Jean_Piaget as on 2 Nov 2015

iv 'Doing' Academics—I have used language to stress that 'doing' does have a role in learning. 'Doing' complements theoretical learning and 'Individual and personalised syllabus' means that every child does a different thing in the Tinkering LAB.

v http://www.ryerson.ca/content/dam/lt/resources/handouts/ExperientialLearningReport.pdf as on 2 Nov 2015

प्रमोद मैथिल पिछले लगभग दो दशकों से एक शिक्षाशास्त्री, शोधकर्ता और उद्यमी के रूप में कार्य कर रहे हैं। वह 'स्कूल फ़ार माई चाइल्ड' (पेंगुइन प्रकाशन) के लेखक हैं और *प्रकृति इनिशिएटिव* के संस्थापक हैं, जिसने टी-लैब का निर्माण किया है। टी-लैब स्कूलों में रचनात्मकता को बहाल करने का एक अनूठा स्थान है, जहाँ पर बच्चे अपने विचारों पर खुली खोजबीन कर सकते हैं। वे एक TEDx स्पीकर भी हैं। उनसे *pramod.maithil@gmail.com* पर सम्पर्क किया जा सकता है।

अनुवाद : बलराम बोधि **पुनरीक्षण** तथा **कॉपी एडीटिंग :** स्वाति भदौरिया